

जैन शास्त्रों में सुख - शान्ति के सूत्र

डा. सुनीता इन्दोरिया
जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूं (राज.)

प्रत्येक प्राणी की एक ही कामना होती है- सुख मिले और दुःख का सामना न हो। सबके लिए सुख प्रिय है और दुःख अप्रिय है।

सुखार्थी मानव जगत्

मानव अपना प्रत्येक चिन्तन और प्रत्येक शारीरिक व्यापार मात्र सुख प्राप्ति के लिए करता है। चूंकि सुख की प्राप्ति भौतिक साधनों से, वित्तीय सामग्री से होती है, इसलिए उसे प्राप्त करने हेतु भी विविध प्रयत्न करता है, ताकि जीवन में, उसके परिवार में सुख-शान्ति का जीवन जी सके। वह ऐसे कार्य करना चाहता है, जिससे उसे समाज में वह प्रशंसनीय कीर्ति मिल सके, उसे आत्मीय सुख प्राप्त हो सके। वह ऐसे कामों से बचना चाहता है, जिनसे उसकी अपकीर्ति, निन्दा हो और उसे आत्मीय दुःख भोगना पड़े। अतः सुख की शान्ति की प्राप्ति में अभीष्ट सुख साधनों की प्राप्ति आदि स्वतः जुड़ी हुई होती है। किन्तु, उस सुख शान्ति प्राप्त करने के उपाय आखिर क्या हो सकते हैं? इस पर विचार किया जा रहा है-

भारतीय संस्कृति में सुख-प्राप्ति के उपाय

भारतीय संस्कृति में धर्म को ही सभी सुखों-भौतिक, सांसारिक, पारलौकिक व आध्यात्मिक की प्राप्ति का साधन माना

गया है।ⁱ भगवद्गीता में सुख के कई स्तर (सात्त्विक, राजस व तामस) बताये गये हैं। धर्म के भी अनेक रूप हैं।ⁱⁱ उनमें से शास्त्रकारों ने कुछ को रेखांकित कर, उन्हें सूत्र रूप में प्रस्तुत किया है। जैन परम्परा के आचार्यों का इस प्रसंग में जो निर्देश प्राप्त हैं, वे इस प्रकार हैं-

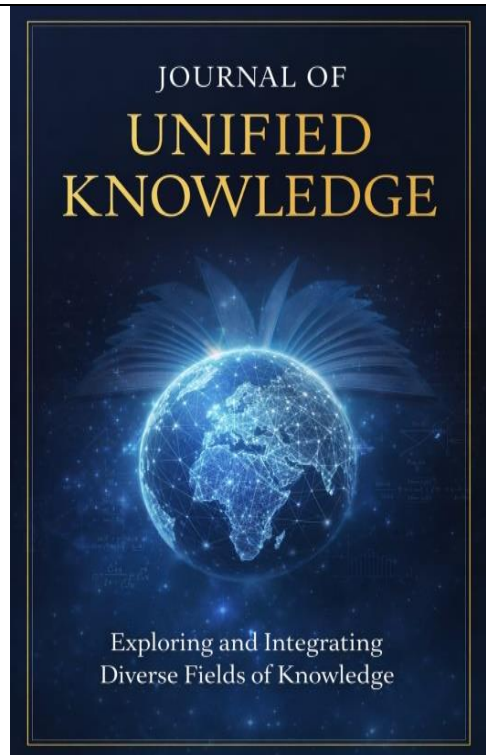
जैनशास्त्रों में विशिष्ट दिशा-निर्देश

सुख-प्राप्ति के प्रसंग में जैन परम्परा में कुछ विशिष्ट दार्शनिक सिद्धान्त मान्य हैं, प्रत्येक सुखार्थीके लिए वे मननीय हैं। वे इस प्रकार हैं-

(1) प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, जीना चाहता है, दुःख से घबराता है-

सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुक्खपडिक्का.....

पियजीविणो जीविउकामा। सव्वेसिं जीवियं पियं।ⁱⁱⁱ



Corresponding author:

डा. सुनीता इन्दोरिया
जैन विश्वभारती संस्थान लाडनूं (राज.)

Indoriasunita1@gmail.com

ISSN: 3139-227X

Submission: June 03, 2026

Review : June 22, 2026

Published : July 16, 2026

(2) मनुष्य अपनी प्रशंसा, सम्मान-पूजा, दुःख-प्रतिकार आदि के लिए ही विविध प्रवृत्तियां करता है-

इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण माणण पूयणाए.....दुक्खपडिधायहेउं।^{iv}

सुख-दुःख का स्रोत निज आत्मा ही

तीर्थंकरों द्वारा प्रवर्तित जैन परम्परा में सुख-प्राप्ति या दुःख-निवृत्ति के उपायों की पृष्ठभूमि में कुछ सिद्धान्तों का भी निदर्श किया है, जिनको जाने बिना सुख-प्राप्ति या दुःख-निवृत्ति नहीं हो सकती। वे सिद्धान्त निम्नलिखित हैं-

मानव अपने सुख-दुःख का कर्ता स्वयं ही है। बन्ध(दुःख) व मोक्ष (सुख) - ये दोनों अपनी आत्मा के ही आश्रित हैं, अर्थात् आत्मा ही सुख-दुःख का स्रोत है- **बन्धप्पमोक्खो तुज्झ अज्झत्थेव।^v** अर्थात् बन्ध या मोक्ष तुम्हारी अपनी आत्मा में ही है। इसी प्रकार हमारे आत्मीय परिणाम ही सुख या दुःख के निमित्त होते हैं।

सुख प्राप्ति हेतु तुम्हारी स्वयं की आत्मा ही तुम्हारी मित्र, सहायक है। बाहर किसी मित्र को क्यों खोजना-**पुरिसा तुममेव तुमं मित्तं किं बहिया मित्तमिच्छसि।^{vi}**

दुःख से छूटना हो तो अपनी आत्मा का ही निग्रह करो, दुःख से मुक्ति मिल जायेगी- **अत्ताणमेव अभिणिभिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि।^{vii}**

दूसरों को अपने समान समझो- **आयवो बहिया पास।^{viii}** अर्थात् अपने समान ही (सुखी-दुःखी, सुखार्थी) दूसरों को देखो।

सव्वं जगं तू समणणुपेही,^{ix} अर्थात् समग्र विश्व को सम भाव से देखो।

समयं लोगस्स जाणिता, एत्थ सत्थोवरए।^x

अर्थात् सभी आत्माएं समान हैं, सुखार्थी हैं, यह समझ कर हिंसा (परपीड़ा, परघात) कार्य से उपरत रहो।

समाहिकारए णं तमेव समाहिं पडिलब्भइ^{xi} अर्थात् जो किसी को समाधि(सुख) पहुंचाता है, वह स्वयं समाधि(सुख) पाता है। तात्पर्य यह है कि सुखार्थी व्यक्ति को चाहिए कि वह दूसरों के सुख का कारण बने, सबके प्रति मैत्री भावना आदि रखकर किसी भी प्राणी को दुःख न पहुंचाए अपितु सुख पहुंचाए, तो प्रतिफल रूप में उसे भी सुख प्राप्त होगा।

निष्कर्ष यह है कि जो स्वयं का सुख चाहता है, वह दूसरों के सुख का भी खयाल रखे। अपने आत्मीय परिणामों को अशुभ न बनने दे। शुभ परिणामों से स्वतः दुःख-निवृत्ति व सुख-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

उक्त वैचारिक पृष्ठभूमि में जैनशास्त्रों में सुख-प्राप्ति या दुःख-निवृत्ति के विशिष्ट सूत्र या उपाय बताये गये हैं, उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है-

कामनाओं पर नियन्त्रण

जीवन में मानव अनेक प्रकार की आशाओं को संजोता है, उनकी प्राप्ति न होने पर दुःख भोगता है। अतः आकांक्षाओं पर नियन्त्रण रखना सुखार्थी के लिए आवश्यक है। संस्कृत की प्रसिद्ध सूक्ति है- **आशा हि परमं दुःखं, नैराश्यं परमं सुखम्।** अर्थात् आशा ही परम दुःख है, आशारहित होना ही परम सुख है। प्रत्येक मानव को कामना करने वाला बताया गया है। ऐसा मानव मन की कामना या आशा पूर्ण न होने पर शोक करता है तथा प्राप्ति न होने पर क्षीणकाय हो जाता है, आंसू बहाता है, पीड़ा और परिताप का अनुभव करता है।^{xii} इस दृष्टि से आगम में उपदेश दिया गया है- **‘आसं च छंदं च विगिचं धीरे** अर्थात् हे धीर! तुम आशा और स्वच्छन्दता को छोड़ो। उत्तराध्ययन सूत्र में बताया गया है कि इच्छा या कामना आकाश के समान अनन्त होती है-इच्छा हु आगास समा अणंतिया। वह कभी पूर्ण नहीं हो पाती। अतः उस स्थिति में दुःख का होना और सुख का नष्ट होना स्वाभाविक है। वहां यह भी बताया गया है कि कामभोगों की लालसा में ही प्राणी एक दिन उन्हें भोगे बिना ही दुर्गति में चले जाते हैं।^{xiii}

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि शरीर काम भोग दुःख देने वाले हैं। **‘सत्त्वे कामा दुहावहा’^{xiv}** वहां यह भी कहा गया है **‘कामाणुगिद्धिप्पभवं खु दुक्खं।** अर्थात् जितने भी दुःख हैं वे सब कामासक्ति से ही पैदा होते हैं। दशवैकालिक सूत्र में भी कहा गया है कि कामनाओं को दूर करना ही दुःखों को दूर करना है।^{xv}

आचार्य शुभचन्द्र ने भी आशा की निंदा करते हुए कहा है-

शक्रोऽपि न सुखी स्वर्गे स्यादाशानलदीपितः।^{xvi}

अर्थात् स्वर्ग का इन्द्र भी आशारूपी अग्नि से जलता रहता है और वह सुखी नहीं हो पाता। अतः आचार्य का उद्बोधन है कि आशा पर नियन्त्रण न रख जाए तो यह निरन्तर लोकपर्यन्त फैलती रहती है, इसका मूल दृढ़ होता जाता है, फिर इसका काटना अशक्य हो जाता है, इस कारण इसको रोकना ही श्रेष्ठ है। आगम का यह भी उपदेश है कि व्यक्ति को लोकैषणाओं से दूर रहना चाहिए- **‘णो लोगस्सेसणं चरे।^{xvii}** इसलिए आशारूपी राक्षसी का संहार करने के बाद ही अर्थात् आषा तृष्णा से रहित होने पर ही व्यक्ति सुखी हो सकता है।

त एव सुखिनो धीरा यैराशा राक्षसी हता।^{xviii}

जितेन्द्रियता व मनोनिग्रह

जितेन्द्रिय शब्द से तात्पर्य है- इन्द्रियों व मन पर नियन्त्रण रखने वाला। वह व्यक्ति जिसने अपनी वासनाओं, प्रबल भावनाओं उत्तेजनाओं आदि पर नियन्त्रण कर लिया हो, वह जितेन्द्रिय कहलाता है। इन्द्रियों के अधिपति मन को जीतना अत्यन्त कठिन माना गया है। उसे दुष्ट घोड़े की उपमा दी गई है।^{xix} जिसका मन विषयों से कलंकित नहीं होता उसे स्वतः दिव्य सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं।^{xx} मात्र मन की विजय ही व्यक्ति को समस्त प्रयोजनों की सिद्धि देने वाली होती है। एकमात्र मनोनिग्रह ही समस्त अभ्युदयों का साधक होता है।^{xxi} मनोनिग्रह की सिद्धि होने पर आत्मनियन्त्रण भी स्वतः

सिद्ध होता है। उत्तराध्ययन में कहा गया है-‘अप्पा दन्तो सुही होई’^{xxii} अर्थात् मनोनिग्रह से युक्त नियन्त्रित आत्मा ही सुखी मानी गई है।

वस्तुतः हमारे पुण्य और पाप के संचय में मन का सर्वाधिक महत्त्व होता है। स्वच्छन्द मन इन्द्रियों को विषयों व दुःखसनों की ओर ढकेलता है। फलस्वरूप, दुर्गति एवं दुःख का मार्ग प्रषस्त होता है जानार्णव में आचार्य शुभचन्द्र ने उपदेश स्वरूप कहा है-कि इन्द्रियों से होने वाला तथाकथित सुख अनेक जन्मों में क्लेश व दुःख को पैदा करने वाला होता है। इसमें जो क्षणिक सुख मिलता भी है तो वह वास्तविक दुःख अर्थात् सुखाभास है -

यदक्षविषयोद्भूतं दुःखमेव न तत्सुखम्।

अनन्त जन्म सन्तानक्लेशसंपादकं यतः।^{xxiii}

उत्तराध्ययन में भी कहा गया है ये कामभोग क्षण मात्र के लिए सुखदायी होते हैं, किन्तु फिर चिरकाल तक दुःख देते हैं। अतः ये अधिक दुःख और अल्प सुख देते हैं। ये संसार से मुक्त होने में बाधक हैं, अनर्थों की खान है^{xxiv} वस्तुतः शाश्वत और अनन्त सुख आध्यात्मिक साधना से ही प्राप्त होता है। जो इन्द्रियों के विषयों के बिना ही अपने आत्मा में आत्मा से ही सेवन करने में आता है, उसे योगीजनों ने आध्यात्मिक सुख कहा है।^{xxv}

समता आदि धर्मों का विकास

हमारे सांसारिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के सुखों का कारण धर्म माना गया है। धर्म ही हमारे लिए माता पिता रक्षक आदि है।^{xxvi} समस्त दुःखों का कारण पाप है तथा सुख का कारण धर्म है। आत्मानुशासन में कहा गया है। -

पापाद दुःखं धर्मात्सुखम्^{xxvii}

शरणं परमं धर्मास्तास्माच्च परमं सुखम्^{xxviii}

धर्मों में प्रधान अहिंसा को कहा गया है। अहिंसा परमो धर्मः^{xxix} जानार्णव में कहा गया है। अहिंसैकाऽपि यत्सौख्यं कल्याणमथवा शिवम्^{xxx} आचारांग सूत्र में कहा गया है दुःख का कारण आरम्भ अर्थात् हमारी हिंसक प्रवृत्ति है। आरंभज दुःखं^{xxxi} अज्ञानी जीव क्रूर हिंसक कर्म करता हुआ दुःख को प्राप्त होता है।^{xxxii} इसलिए जो सुख चाहता है उसे अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिए।

अहिंसा का ही दूसरा रूप समता भाव है। जानार्णव में कहा गया है कि -

तस्यैवाविचलं सौख्यं.....समत्वं यस्य योगिनः।^{xxxiii}

जैन श्रावक सामायिक की साधना में समत्व धर्म का ही अभ्यास करता है। समता का ही पर्याय परम शांति है। आचार्य रामसेन ने तत्त्वानुशासन में कहा है समता और परम शान्ति एकार्थक है -

माध्यस्थ्यं समतोपेक्षावैराग्य साम्यस्पृहा।

वैतृष्ण्यं प्रशमः शान्तिरित्येकार्थोऽभिधीयते।^{xxxiv}

समता भाव से प्राप्त होने वाले सुख के विषय में आचार्य शुभचन्द्र ने कहा है साम्यभावित भावानां स्यात्सुखं यन्नीषिणाम्।^{xxxv} इस प्रकार अहिंसा समता आदि धर्मों का आचरण प्रत्येक जीवन के लिए सुख शांति का मार्ग प्रशस्त करता है।

आध्यात्मिक भावों की निर्मलता

आत्मा स्वभावतः परम शुद्ध एवं निर्मल है। किन्तु मोहजनीत रागद्वेष, रागद्वेष से काम क्रोध लोभ आदि कषाय उत्पन्न होते हैं। जिनके कारण वह अशुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त होता है और अपने लिए दुर्गति का मार्ग प्रशस्त करता है। यदि इन भावों पर नियन्त्रण रखा जाए और इन्हें निर्मल बनाया जाये तो स्वतः सुख का मार्ग प्रशस्त होता है। पूर्णतः कषाय विजय होने पर वीतरागता की सिद्धि होती है। जिसमें परम सुख मोक्ष सुख की प्राप्ति हो पाती है।

उत्तराध्ययनमें हमारे दुःख का कारण मोह मोहनीय कर्म है। इसके नष्ट होने पर दुःख स्वतः ही नष्ट हो जाता है।^{xxxvi} इसी प्रकार क्रोध मान माया लोभ इन कषायों से ग्रस्त होकर व्यक्ति प्रमाद में पाप कर्म कर बैठता है। क्रोध मान माया लोभ ये चार कषाय व्यक्ति के लिए दुःख का वातावरण तैयार करते हैं।

क्रोध प्रीति का नाश करता है। अर्थात् क्रोधी व्यक्ति से कोई भी प्रेम नहीं करता है। मान विनय का नाश करता है अर्थात् अभिमानी व्यक्ति की उदण्डता से सभी रुष्ट व दुखी होते हैं। माया मित्रों का विनाश करती है। मायावी व्यक्ति का कोई मित्र नहीं होता है, लोभ से प्रीति मित्रता व विनय तीनों का ही नाश होता है।^{xxxvii}

जैन आगम में इस प्रकार नियन्त्रण करने के उपाय भी बताये गये हैं। जो इस प्रकार हैं। उदाहरणार्थ अपशम मन की शांति से क्रोध पर विजय प्राप्त करें, मृदुता से अभिमान पर नियन्त्रण करें, माया को ऋजुता सरलता से विजय करें। सन्तोष से लोभ पर विजय प्राप्त करें।^{xxxviii}

मोहग्रस्त प्राणी अपने शरीर ही आत्मा समझ बैठता है यही मान्यता उसके दुःख का कारण बनती है। समाधिषतक में कहा गया है-

मूलं संसार दुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः^{xxxix}

शरीर और आत्मा का भेदज्ञान हो जाने पर व्यक्ति को परमानन्द की प्राप्ति होना माना गया है। आचार्य पूज्यपाद ने समाधिषतक में कहा है-

आत्मदेहानतज्ञान-जनिताहादनिर्वृतः।^{xl}

कषायों के उपशम से व्यक्ति परम सुखी व शान्ति को प्राप्त करता है। आचार्य उमास्वाति ने प्रसनरति प्रकरण में कहा है रागी मनुष्य सब विषयों की प्राप्ति से उत्पन्न हुए जिस सुख को प्राप्त करता है वीतरागी मनुष्य उससे अनन्त कोटि गुणे सुख को सहज ही प्राप्त कर लेता है। इष्ट का वियोग,

अनिष्ट का संयोग, इष्ट के वियोग न होने की इच्छा से होने वाला जो दुःख सरागी को उठाना पड़ता है वीतरागी को वह दुःख छुता भी नहीं है।^{xli}

वीतराग सुख -

कषायों के मूल मोहनीय कर्म आदि के क्षय होने पर व्यक्ति पूर्ण वीतरागता की ओर अग्रसर हो जाता है। ध्यान की उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त कर वह तेरहवें एवं चौदहवें गुणस्थान में आरुढ़ होता हुआ शुद्ध रूप अर्थात् सिद्ध बुद्ध अवस्था को प्राप्त कर लेता है। अन्त में शास्वत एवं अनन्त सुख की अवस्था मुक्ति प्राप्त होती है। उत्तराध्ययन में कहा गया है -

अरुविणो जीवधणा नाण दंसणसन्निया।

अडलं सुहं संपता उवमा जस्स नत्थि ड।।^{xlii}

वे अरूपी है, जीवधन सधन है ज्ञान दर्शन से सम्पन्न है जिसकी कोई उपमा नहीं है ऐसी अतुल सुख उन्हें प्राप्त है।

उपसंहार

इस प्रकार जैन शास्त्रों में सांसारिक सुख से लेकर पारलौकिक स्वर्गीय सुख की प्राप्ति के लिए एवं आध्यात्मिक परमसुख की प्राप्ति के लिए भी विविध निर्देश दिये हैं जो आज के परिप्रेक्ष्य में पठनीय मननीय है।

ⁱ यतोऽम्युदयनिःश्रेयस-सिद्धिः, स धर्मः (वैशेषिक सूत्र, 1/1/2)

ⁱⁱ भगवद्-गीता 18/36-39

ⁱⁱⁱ आचारांग सूत्र 1/2/3/63-64 (ख) दशवैकालिक सूत्र 6/11

^{iv} आचारांग सूत्र 1/1/1/10

^v आचारांग सूत्र 1/1/2/36

^{vi} आचारांग सूत्र 1/3/3/62

^{vii} आचारांग सूत्र 1/3/3/64

^{viii} आचारांग सूत्र 1/3/3/52

^{ix} सूयगडो सूत्र 1/106

^x आचारांग सूत्र 1/3/1/3

^{xi} भगवति सूत्र 7/1

^{xii} आचारो, 1/2/5/123-124

^{xiii} कामे पत्थेमाणा अकामा जन्ति दुग्गइ। उत्तराध्ययन सूत्र, 9/53

- xiv उत्तराध्ययन सूत्र, 13/16
xv कामे कमाही कमियं खु दुक्खं। दशवैकालिक सूत्र, 2/5
xvi ज्ञानार्णव, 17/15
xvii आचारांग, 1/4/1/7
xviii ज्ञानार्णव, 17/8
xix उत्तराध्ययन सूत्र, 23/58
xx ज्ञानार्णव, 20/38
xxi ज्ञानार्णव, 22/11-12
xxii उत्तराध्ययन, 1/15
xxiii ज्ञानार्णव, 20/5
xxiv उत्तराध्ययन, 14/13
xxv ज्ञानार्णव, 20/24
xxvi महापुराण 76 /417
xxvii आत्मानुशासन 8
xxviii पद्मपुराण 4/35
xxix महाभारत आदि पर्व, 11/13
xxx ज्ञानार्णव 8/47
xxxi आयारो 1/4/3/29
xxxii आचारांग, 1/5/1/6
xxxiii ज्ञानार्णव 24/18
xxxiv तत्त्वानुशासन 139
xxxv ज्ञानार्णव 24/14
xxxvi उत्तराध्ययन, 32/8
xxxvii दशवैकालिक 8/37
xxxviii दशवैकालिक 8/38
xxxix समाधिशतक 15
xl समाधिशतक 34
xli प्रशमरति प्रकरण 8/124-125
xlii उत्तराध्ययन 36/66